



तुलसी साहित्य में समरसता एवं समन्वय

राखी चतुर्वेदी सोरठिया

शोध संक्षेप

तुलसी साहित्य में समरसता एवं समन्वयता दिखाई पड़ता है। मध्यकाल में जब विदेशी आक्रांताओं द्वारा भारत पर लगातार आक्रमण हो रहे थे, तब भारत में विद्यमान विभिन्न मत-सम्प्रदायों में समन्वय की आवश्यकता थी यथा द्वाँत-अद्वाँत, सगुण-निर्गुण, शैव-वैष्णव-शाक्त इत्यादि। तुलसीदासजी ने अपने साहित्य में समस्त मतों में समन्वय स्थापित कर समाज को एकरस किया। अतः रामचरितमानस को हम ज्ञान-विज्ञान के भण्डार के साथ-साथ समाज को एकरस बनाने वाला उद्दीपक ग्रंथ मान सकते हैं। उक्त ग्रंथ हमारे प्राचीन भारत में ज्ञान, विज्ञान, परंपरा, सामाजिक रीति-नीति का दर्पण है जो आने वाली पीढ़ी को अपने ज्ञान भण्डार से दिशादर्शन करती रहेगी। प्रस्तुत शोधपत्र की मुख्य विषयवस्तु यही है।

प्रस्तावना

मुख्य रूप से गीता के अंतर्गत यह विशेषता मानी जाती है कि वह स्वयं भगवान श्रीकृष्ण के मुख की वाणी है और रामचरितमानस भी भगवान राम की वाणी और उनके चरित से ओत-प्रोत है। परन्तु यह एक धार्मिक आस्था से युक्त व्यक्तियों का ही उत्तर माना जा सकता है। वैज्ञानिक दृष्टि से यदि हम देखें तो हमें यही कहना पड़ेगा कि इनके अंतर्गत जीवन के उच्च आदर्श और कर्तव्य को उस स्तर तथा उस गहरी भूमिका के साथ स्पष्ट किया गया है जो सत्य के अधिकांश को अपने अंतर्गत समेटे है। फिर प्रश्न यह उठता है कि इन ग्रंथों में ऐसा क्यों है ? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि इसका कारण दोनों ही ग्रंथों का समन्वयवादी दृष्टिकोण है।

समन्वयवाद अनुभूत और कल्पित सत्यों के स्वरूपों के दोनों छोरों को मिलाकर, दोनों को स्पर्श करता हुआ दृष्टिकोण सिद्धांत या जीवनक्रम है। यह समन्वयवाद सत्य और असत्य के बीच नहीं हो सकता वरन् व्यापक अनन्त और अखंड सत्य के सीमित अनुभवों के बीच हो

सकता है। राम और रावणत्व का समन्वय एक हास्यास्पद वस्तु है, क्योंकि रावणत्व असत्य और जीवन के विकारों पर आश्रित है, परन्तु सत्यान्वेषण के प्रयत्न में अनेक विद्वानों ने जो सत्य सिद्धांत निश्चित किये हैं और यहाँ उनमें परस्पर विरोध-सा दृष्टिगोचर होता है। वहाँ समन्वयवाद की आवश्यकता पड़ती है, जिससे विरोधी पड़ने वाले दो सत्य सिद्धांतों के बीच सामंजस्य स्थापित हो सके।

भारतीय जीवन-क्रम में प्राचीन काल से ही समन्वय स्थापना के प्रयत्न कथन ही अधिक प्राप्त होते हैं। इसलिए कबीर का संदेश साधारण समाज के लिये रचनात्मक की अपेक्षा विध्वंसात्मक रूप में अधिक प्रकट हुआ है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपना रचनात्मक समन्वयवाद प्रस्तुत किया और इसीसे उसका समाज पर इतना व्यापक और गहरा प्रभाव पड़ा। कबीर और तुलसी दोनों ही स्वामी रामानंद की शिष्य परंपरा से हैं, जो एक ओर निर्गुणोपासना पर बल देते थे और दूसरी ओर शक्तिग्राम की पूजा को भी स्वीकार करते थे। उन्हीं से प्रेरित होकर दोनों ने ही रामोपासना का उपदेश दिया।



कबीर के समय अवतारवाद और मूर्तिपूजा के खंडन की आवश्यकता थी, क्योंकि हिन्दू-मुस्लिम दोनों के बीच समन्वय इसके ही द्वारा स्थापित हो सकता था। अतः कबीर ने दोनों का खंडन कर, राम के निराकर स्वरूप की उपासना का उपदेश दिया। उन्होंने स्पष्ट कहा -

दसरथ सुत तिहूँ लोक बखाना। रामनाम कर मरम है आना।

उन्होंने राम के अवतारी रूप का खंडन कर राम और रहीम की एकता स्पष्ट की थी। पर गोस्वामी तुलसीदास ने, जिनका उद्देश्य भारतीय और विदेशी संस्कृति के बीच समन्वय करना उतना नहीं था, वरन् भारतीय संस्कृति के ही विभिन्न सांप्रदायिक और विरोधी लगने वाले रूपों के बीच समन्वय की स्थापना करना था। उन्होंने राम के परब्रह्मत्व को सगुण साकार रूप में भी सिद्ध किया, जिससे कबीर जैसे संतों के खंडन से विक्षुब्ध भारतीय संस्कृति के परम्परागत स्वरूप पर आस्था रखने वालों को बहुत सांत्वना प्राप्त हुई। विदेशी संस्कृति के सामने हीन भावना के स्थान पर अपनी संस्कृति के प्रति गौरव की भावना उनके मन में जागृत हुई। गोस्वामी तुलसीदास का साहित्य भारतीय संस्कृति के प्रति विदेशियों को भी विमुग्ध करने वाला है। गोस्वामी तुलसीदास के इस दृष्टिकोण का यह परिणाम हुआ कि उनके बाद कबीर के अनुयायी संतों में भी सगुण के प्रति आस्था का विकास हुआ। यहां तक कि सतनामी संप्रदाय जैसे निर्गुण पंथ में हनुमान की उपासना भी प्रचलित हो गई। प्राचीन काल में ही आर्यों का यज्ञ विधान और द्रविड़ों की तीर्थ और उपासना का सम्मिलित स्वरूप भागवत धर्म के रूप में विकसित हुआ। भक्ति जिसका मुख्य प्रतिपाद्य है, भक्ति प्रधान

भागवत धर्म भारत में उत्तर और दक्षिण सर्वत्र व्याप्त था। वैष्णव भक्ति कर्म और उपासना दोनों का समन्वय करती है, जिसका स्वरूप गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी स्पष्ट किया है - श्रुतिसंमत हरिभक्ति पथ संजुत विरति बिबेक।

- रामचरितमानस (काशीराज संस्करण)

गोस्वामी तुलसीदास जी को समन्वय की प्रेरणा गीता से भी मिली है। बौद्ध धर्म के अवशेष और शिव-भक्ति उपासना के मध्य समन्वय करने वाला नाथ-सम्प्रदाय भी समन्वय की नींव पर खड़ा हुआ। इनमें कबीर और नानक के समन्वय का एक विशेष महत्व है। कबीर का समन्वयवाद विभिन्न मतों के तत्वों के चयन में उतना नहीं जितना विभिन्न विरोधी लगने वाले मतों के अतिरेकों के विरोध में देखने को मिलता है। उनका मुख्य प्रयत्न हिन्दू-मुस्लिम धर्मों के समन्वय में था। परन्तु उनके समन्वय में इन दोनों के लिए खंडनात्मक दृष्टि है।

तुलसीदास जी ने समस्त संसार को राममय रूप में देखा है, जिससे स्पष्ट होता है कि वे भिन्न लगने वाले पदार्थों और जीवों के अंतर्गत परिव्याप्त मूलतत्त्व ब्रह्म या राम को देखते हैं।

ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।

सौ मायाबस भयेउ गुसाईं । बंध्यो कोर मरकट की नाईं।।

यह देवता का स्वरूप चाहे तत्त्वतः शाश्वत और सत्य न हो पर प्रत्यक्षतः यथार्थ है। अतएव गोस्वामीजी ने ईश्वर और जीव में भेद को स्वीकार किया है। ईश्वर मायापति है जीव माया का दास। यही दोनों में मुख्य भेद है। रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में समन्वय करते हुए इस प्रकार कहा है



ज्ञान अखंड एक सीताबर। मायाबस्य जीव सचराचर।

जो सब के रह ज्ञान एकरस। ईश्वर जोवहि भेद कहह कस ॥

मयाबस्य जीव अभिमानी। ईसबस्य माया गुणखानी॥

मुघा भेद जद्यपि कृत मायां। बिनु हरि जाइ न कोटि उपायां ॥

द्वैत और अद्वैत धारणा का समन्वय ही गोस्वामीजी के अवतारवाद का आधार है। अद्वैत भावना का ब्रह्म निर्गुण और निराकार है पर अवतारवाद के साथ द्वैत अनिवार्य है। गोस्वामीजी ने अवतार के द्वैत-वृद्धि प्रेरक स्वरूप का भी यत्र-तत्र विराट रूप वर्णन करके अद्वैत की प्रतिष्ठा की है। इस परब्रह्म के अवतारी स्वरूप में समस्त ब्रह्माण्ड समाविष्ट है। इस प्रकार अवतारवाद की प्रतिष्ठापना द्वारा गोस्वामीजी ने द्वैत और अद्वैत का समन्वय किया है।

गोस्वामी तुलसीदास का समन्वय संबंधी प्रयत्न महत्वपूर्ण कार्य था। उनकी समन्वय गंगा में उस युग की समस्त विरोधी धाराएं आकर घुलमिल गईं और विरोध की अपेक्षा दूसरे सम्प्रदायों और पंथों में समानता के तत्व खोजने की दृष्टि विकसित हुई।

गोस्वामी तुलसीदास का यह समन्वयवाद विविध मुखी है। मोटे तौर से हम उनके समन्वय को चार क्षेत्रों में बाँट सकते हैं- 1 दार्शनिक क्षेत्र, 2 सांस्कृतिक क्षेत्र, 3 धार्मिक क्षेत्र, 4 सामाजिक क्षेत्र। दार्शनिक क्षेत्र में गोस्वामी जी का मुख्य प्रयत्न द्वैतवादी और अद्वैतवादी दर्शनों के बीच समन्वय स्थापित कर दर्शन को व्यावहारिक बनाना था। अद्वैतवादी और द्वैतवादी दोनों ही

दर्शन अपनी-अपनी विशेषता और महत्ता रखते हैं। अद्वैतवाद का मूल तत्व समस्त जगत् में परिव्याप्त ब्रह्म है।

गोस्वामीजी ने इस अद्वैत दृष्टि को अपनाते हुए सर्वत्र ब्रह्म के दर्शन किए थे और उसी भाव से युक्त होकर वे कहते हैं -

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।

बंदों सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥

आकार चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी॥

सीय राम मय सब जग जानी। करों प्रनाम जोरि जुग पानी॥

तुलसीदास जी ने शैव और वैष्णव मतों के बीच समन्वय का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। तुलसीदास के समय में और उनके पूर्व शैव और वैष्णवों में बहुत अधिक द्वेषभाव बढ़ रहा था। दोनों एक दूसरे के शत्रु से हो गए थे। कहते हैं कि स्वामी रामनंदाचार्य के गुरु की आँखें उनके वैष्णव होने के कारण उस प्रदेश के शैव राजा ने निकाल ली थीं। ऐसी दशा में दोनों के बीच समन्वय आवश्यक समझकर गोस्वामीजी ने रामचरितमानस में स्थान-स्थान पर शिव और राम के सम्बन्ध को स्पष्ट किया। राम स्वयं कहते हैं -

सिवद्रोही मम शंकर दास कहावा। सो नर सपनेहु माहि न पावा॥

स्वयं राम शंकर की पूजा करते हैं और शंकर राम के उपासक हैं। तुलसीदास ने शंकर की वंदना करते हुए लिखा है

सेवक स्वामि सखा सियपी के।

वास्तव में गोस्वामीजी की समन्वयवादी दृष्टि में ब्रह्म और जीव के सम्बन्ध में उठने वाले परस्पर संघर्षशील दार्शनिक मतवाद भ्रम हैं, क्योंकि अखंड और अनंत शक्ति के अलग-अलग



पहलू हैं। समग्रता से देखने पर उनमें कोई विरोध नहीं है। जैसा कि विनय-पत्रिका में उनका कथन है-

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि माने।

तुलसीदास परिहरे तीनि भ्रम सो आपन पहिचाने।।

-तुलसी-ग्रंथवली (ना. प्र. स., तीसरा संस्करण), दूसरा खंड

दार्शनिक क्षेत्र का अद्वैत और द्वैत का समन्वय ही सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्र में ज्ञान और भक्ति के समन्वय के रूप में प्रकट हुआ है। ज्ञान और भक्ति का समन्वय उस युग के लिए एक आवश्यक बात थी। तुलसी का ज्ञान और भक्ति का समन्वय स्वयं उनके द्वारा प्रतिपादित भक्ति का स्वरूप है अर्थात् भक्ति और ज्ञान का जो स्वरूप उनके समय में प्रचलित था उसका समन्वय करके उन्होंने अपनी भक्ति का स्वरूप खड़ा किया था जो इस प्रकार है-

श्रुतिसंमत हरिभक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक।

विशाल समन्वयवादी दृष्टि के कारण ही अपने रामचरित मानस में गोस्वामीजी ने जहाँ अत्यन्त उच्च और आदर्श चरित्रों का चित्रण किया है वहीं दूसरी ओर मंथरा, केवट, सुग्रीव जैसे यथार्थ चरित्रों का भी चित्रण किया है। जहाँ एक ओर उनके रामराज्य के वर्णन में यह उल्लेख है कि - बयरु न कर काहू सन कोई। रामप्रताप विषमता खोई।।

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दोना। नहिं कोउ अबुध न लक्षणहोना।।

समाजिक क्षेत्र में भी गोस्वामीजी की समन्वय भावना ही महत्त्वपूर्ण दिखलाई देती है। इसके अंतर्गत हम शास्त्र और लोक का समन्वय,

आदर्श और यथार्थ का समन्वय, सत्य और प्रेम का समन्वय जैसी बातों को देख सकते हैं। गोस्वामीजी की भक्ति की स्थापना में लोक-जीवन और मोक्ष की भावना का समन्वय है। मोक्ष जीवन की अनुभूतियों से रहित परमात्मा के सामीप्य की स्थिति है और यह जीवन मायाजाल से ग्रसित अनेक सुखदुःखानुभूतियों का संगठन और परमात्मा से दूर की स्थिति है। भक्ति के अंतर्गत इन दोनों ही स्थितियों के समन्वय का प्रयत्न गोस्वामीजी ने किया है। एक तो उनका स्पष्ट कथन ही है कि सगुनोपासक मोक्ष न लेहों। (मा.)। इसके अतिरिक्त उनका यह भी विश्वास है कि मुक्ति की स्थिति रामभक्ति की अनुगामिनी है-

रामभजत सोइ मुक्ति गोसाईं। अनइछित आवे गरिआईं।

यह विचार मानस तथा अन्य ग्रंथों में बराबर देखने को मिलता है। गोस्वामीजी के समय में संस्कृत में लिखना अधिक सम्मान की वस्तु समझी जाती थी, पर संस्कृत लोक भाषा न थी। अतएव उन्होंने संस्कृत के प्रति-आदर भाव रखते हुए और उसे देवाणी स्वीकार करते हुए साथ ही स्वयं संस्कृत में रचना करने की क्षमता रखते हुये भी अवधी भाषा में रचना करने का निश्चय किया। उनका दृष्टिकोण था कि काव्य में भाव या वस्तु महत्त्वपूर्ण होती है, भाषा नहीं।

सामाजिक और पारिवारिक क्षेत्रों में गोस्वामीजी का बड़ा सुन्दर कार्य व्यष्टि और समष्टि का समन्वय है। राम का परिवार इसके लिए आदर्श रूप है। परिवार और समाज दोनों ही में व्यक्ति पुरुषार्थ समष्टि के हित के लिए होना चाहिए, पर समष्टि अर्थात् समाज और परिवार का प्रेम भी व्यक्ति के लिए हो, तभी दोनों का समन्वय



है। गोस्वामीजी ने इस समन्वय को सत्य और प्रेम दोनों के सुन्दर निर्वाह में स्पष्ट किया है। इस प्रसंग में दशरथ और राम दोनों का चरित्र आदर्श रूप है। दशरथ के आचरण को भरत के समक्ष स्पष्ट करते हुए राम कहते हैं -

राखेउ राये सत्य मोही त्यागी। तनु परिहरेउ पेमपनु लागी।

तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार संकोचू।।

राजा के कर्तव्य या सत्य के पालन के लिए अपने पुत्र राम को त्याग दिया। यह समष्टि को व्यष्टि के ऊपर महत्व देना है, पर उन राम के लिए अपना प्रेम प्रकट करने के लिए उन्होंने अपने प्राण छोड़ दिए। इस प्रकार सत्य और प्रेम दोनों का पालन किया। राम ने स्वयं राजा की आज्ञा पालन कर सत्य का निर्वाह किया और भरत के प्रति स्नेहभाव के द्वारा प्रेम का पालन किया। इस प्रकार दोनों के पालन में व्यष्टि और समष्टि का समन्वय सिद्ध होता है।

निष्कर्ष

सम्पूर्ण रामचरितमानस में भारतीय समाज की सम्पूर्णता को व्यक्त किया गया है। महाकाव्य में विज्ञान, ज्ञान, दर्शन के भण्डार के साथ-साथ श्रीराम द्वारा सम्पूर्ण भारत के सामान्यजनों के साथ रहकर समरसता का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया है। चाहे वह शबरी का प्रसंग हो या निषाद राज का प्रसंग उत्तर भारत से लेकर दक्षिण भारत का एक राष्ट्र हो भगवान् हनुमान जी का सुदूर उत्तर में हिमालय से संजीवनी बूटी लाना और दक्षिण भारत तक ले जाना प्रमाणित करता है कि सम्पूर्ण भारत एक राष्ट्र के रूप में प्राचीन काल से विद्यमान है। राष्ट्रवाद की संकल्पना कोई नयी नहीं है। रामचरितमानस में श्रीराम

द्वारा मनुष्य की समरसता ही नहीं संपूर्ण जीव जगत में समरस समाज की स्थापना की थी। जलचर नभचर में जटायु सम्पाती वनचर में वनवासी गिरिवासी वानर भालू गिलहरी इत्यादि। अतः रामचरितमानस समरसता का प्रमाणिक ग्रंथ है और यह प्रमाणित भी होता है कि प्राचीन भारत में कहीं भी उंच-नीच एवं जात-पात विद्यमान नहीं था

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 श्रीरामचरित मानस उत्तरकाण्ड 100 ख

2 श्रीरामचरित मानस उत्तरकाण्ड , दोहा क्रमांक-116 ख , चौपाई क्रमांक-112

3 श्रीरामचरित मानस उत्तरकाण्ड , दोहा क्रमांक-78 क, चौपाई क्रमांक-2,3

4 श्रीरामचरित मानस बालकाण्ड 7 ग

5 श्रीरामचरित मानस बालकाण्ड 7 घ, चौपाई क्रमांक 1

6 श्रीरामचरित मानस लंकाकाण्ड दोहा क्रमांक-1 , चौपाई क्रमांक-9

7 श्रीरामचरित मानस बालकाण्ड दोहा क्रमांक-1

8 श्रीरामचरित मानस उत्तरकाण्ड दोहा क्रमांक-100

9 श्रीरामचरित मानस उत्तरकाण्ड दोहा क्रमांक-19 ग, चौपाई क्रमांक-4

10 श्रीरामचरित मानस उत्तरकाण्ड दोहा क्रमांक-118 ख , चौपाई क्रमांक-2

11 श्रीरामचरित मानस अयोध्याकाण्ड , दोहा क्रमांक-263 , चौपाई क्रमांक-3,4